सामयिकी

भूख का पसरता बाज़ार

डा. ए.के. अरुण

दुनिया में भूख से पीड़ित लोगों की संख्या में फिर वृद्धि होनी शुरू हो गई है। ग़रीब देशों में लाखों लोग समुचित खाद्यान्न खरीद पाने की स्थिति में नहीं हैं। इन लोगों को अब खाद्यान्न उपलब्ध कराने वाली स्वयंसेवी संस्थाओं से भी अतिरिक्त मदद की उम्मीद नहीं है क्योंकि ये अन्तरराष्ट्रीय खाद्य संस्थाएँ भी स्वयं संकट में हैं। विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्ल्यू.एफ.पी.) के निदेशक जोसेटी शीरान की मानें तो डब्ल्यू.एफ.पी. को वर्ष 2008-09 में 300 मिलियन डॉलर की अतिरिक्त आवश्यकता है जिसकी पूर्ति के लिए अभी कोई उम्मीद नहीं है। उल्लेखनीय है कि वर्ष 2007 के बाद से खाद्य मूल्यों में 40 से 55 प्रतिशत की वृद्धि हुई है और भूख से पीड़ित लोगों की संख्या भी बढ़ी है। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) के अनुसार इन दिनों दुनिया के 37 देश अन्तरराष्ट्रीय खाद्य सहायता पर निर्भर है।

अभी हाल ही में एफ.ए.ओ. के महानिदेशक जैक्स डायफ़ ने अपनी भारत यात्रा के दौरान केन्द्रीय कृषि एवं खाद्य मन्त्री शरद पवार से मुलाक़ात कर विश्व खाद्य समस्या पर चर्चा की तथा आशंका व्यक्त की कि खाद्यान्न उत्पादन में आ रही कमी एवं बढ़ते मूल्य से खाद्य संकट और गहरायेगा तथा कई देशों में भोजन के लिए संघर्ष और हिंसक हो सकते हैं। श्री डायफ के अनुसार इस वक़्त दुनिया में अनाज का भण्डार इतना कम है कि यह पूरी दुनिया की आबादी का केवल 8 से 12 हफ़्ते तक ही पेट भर सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि कैमरून, मिस्र, हैती, बुर्कीना फ़ासो तथा सेनेगल जैसे देशों में जारी खाद्य संघर्ष दुनिया के अन्य देशों में भी फैल सकते हैं।

एफ.ए.ओ. की मुख्य चिन्ता यह है कि खाद्य पदार्थों के भण्डारण में आई विश्वव्यापी कमी को कैसे पूरा किया जाए? इसमें सन्देह नहीं कि मुख्य कृषि उपज जैसे गेहूँ, चावल, मक्का आदि की खपत में पिछले कुछ वर्षों से बढ़ोत्तरी हुई है। कई देशों ने हालाँकि अपने यहाँ राशनिंग की व्यवस्था की है, लेकिन खपत में वृद्धि जारी है। अनाजों की खपत में वृद्धि का मुख्य कारण न तो आबादी की वृद्धि है और न ही लोगों के द्वारा भोजन में वृद्धि। बल्कि इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि विकसित देश ऊर्जा प्राप्ति के लिए खाद्यान्नों का अन्ध उपयोग कर रहे हैं। अमरीका और यूरोप में अब खाद्यान्नों से बायोईंधन बनाए जा रहे हैं। वहाँ मक्का, गन्ना, रेपसीड जैसी फसलें खाद्य ज़रूरतों की बजाय अखाद्य उपयोग के लिए उपजाई जा रही हैं। ब्राजील में तो यह प्रक्रिया विगत एक दशक से जारी है। धीरे-धीरे बायोडीज़ल का यह अभियान अफ़्रीका, एशिया में भी फैल रहा है। अन्तरराष्ट्रीय खाद्यान्न समिति (आई.जी.सी.) का अनुमान है कि वर्ष 2007 में 100 मीट्रिक टन खाद्यान्न का उपयोग बायोईंधन बनाने के लिए हुआ।

बढ़ते खाद्य संकट के लिए खाद्य मूल्यों में हुई बेतहाशा वृद्धि को भी मुख्य कारण बताया जा रहा है। खाद्य मूल्यों में हुई वृद्धि के लिए खाद्य विशेषज्ञ अन्तरराष्ट्रीय बाज़ारों में मांस की माँग में वृद्धि को एक बड़ा कारण मान रहे हैं। कहा जा रहा है कि विगत दो दशक में अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर मांस की माँग दो गुनी हो गई है। जाहिर है कि इसी अनुपात में चारा उत्पादन का दायरा भी बढ़ा है। एक आकलन के अनुसार एक किलो गोमांस के लिए 7 किलो खाद्यान्न की आवश्यकता होती है जबकि एक किलो सुअर के मांस के लिए 3 किलो चारा चाहिये। इन माँगों की पूर्ति के लिए बड़े मात्रा में सोयाबीन व अन्य फसलों का उत्पादन किया जा रहा है। अनाज की जगह चारे के उत्पादन का परिणाम है कि आस्ट्रेलिया जैसे देश में खाद्यान्न की कमी होने लगी है। इधर चीन भी अब खाद्य आयात करने लगा है। आस्ट्रेलिया में तो अकाल ने स्थिति और भयावह बना दी है। मौसम में आये प्रतिकूल प्रभावों से भी खाद्य संकट बढ़ा है। अफ़्रीका आदि में इसका गहरा असर देखा जा सकता है।

भारत सरकार का आर्थिक सर्वेक्षण 2007-08 कहता है कि 1990 से वर्ष 2007 तक खाद्यान्न उत्पादन वृद्धि दर 1.2 प्रतिशत ही रही है। इस दौरान जनसंख्या की औसत 1.9 प्रतिशत वृद्धि दर की तुलना में खाद्यान्न उत्पादन की दर कम ही है। इस दौरान उत्पादन कम होने से प्रति व्यक्ति अनाज तथा दालों की उपलब्धता भी घटी है। अनाजों की खपत वर्ष 1990-91 में जहाँ प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 468 ग्राम थी वहीं वर्ष 2005-06 में घटकर यह प्रतिदिन 412 ग्राम प्रति व्यक्ति रह गई है। इस दौरान दालों की खपत प्रतिदिन 42 ग्राम प्रति व्यक्ति से घटकर 33 ग्राम रह गई। यहाँ ध्यान देने की बात है कि 1956-57 में प्रति व्यक्ति दालों की उपलब्धता 72 ग्राम थी।

इन आँकड़ों और तथ्यों से साफ़ है कि खाद्यान्न की उपलब्धता में कमी आ रही है। इसका असर लोगों के स्वास्थ्य पर भी देखा जा सकता है। वर्ष 2005-06 के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार भारत में 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों में बड़े पैमाने पर शारीरिक कमजोरी देखी गई है। इस उम्र के 43 फीसदी बच्चे का शारीरिक वज़न उम्र के लिहाज

से काफ़ी कम है। पर्याप्त पोषण के अभाव में अनेक रोगों से ग्रस्त बच्चों की तादाद भी बढ़ रही है। गर्भवती और दूध पिलाने वाली माताओं के शरीर में कैल्शियम और लोहा तथा अन्य लवण व पोषक तत्त्वों की कमी भी स्थिति की भयावहता की ओर इशारा करते हैं। 15 से 45 वर्ष के बीच की महिलाओं का बॉडी मास इन्डेक्स (बी.एम.आई.) 18.5 से भी कम है। यह बेहद गम्भीर है। इनमें से 16 प्रतिशत महिलाएँ तो बेहद ही कमज़ोर हैं। 15 से 45 वर्ष की उम्र के 34 फीसद फरुषों में भी कुपोषण बहुत ज़्यादा है। इनका बी.एम.आई. भी 18.5 से कम है। वास्तव में नक़दी फसलों से आर्थिक सम्पन्नता भले ही बढ़ रही हो लेकिन आम लोगों के स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है।

1983-85 में अनाज उत्पादन की जो स्थिति थी उसमें अखाद्य फसलों की हिस्सेदारी लगभग 37 प्रतिशत थी जो वर्ष 2006-07 में बढ़कर 46.7 प्रतिशत तक पहुँच गई। आँकड़ों के अनुसार खाद्य फसलों के उत्पादन में जहाँ 2 प्रतिशत की वृद्धि हुई है वहीं अखाद्य फसलों का उत्पादन 4 प्रतिशत तक बढ़ गया है। विश्व बैंक की ही रिपोर्ट मानती है कि महँगी क़ीमत वाली फसलों की माँग बढ़ी है जबकि भोजन के लिए ज़रूरी फसलों का उत्पादन घटा है। सरकार भी खाद्य फसलों की तुलना में अखाद्य फसलों का उत्पादन बढ़ाने के लिए ज़्यादा प्रोत्साहित करती है। उदाहरण के लिए वर्ष 2004-05 में फूलों का जो निर्यात 221 करोड़ रुपये था वह 2006-07 में बढ़कर 650 करोड़ हो गया। इसमें 194 फीसद वृद्धि दर्ज की गई। ऐसे ही फल सब्ज़ी का निर्यात 1363 करोड़ रुपये से बढ़कर 2411 करोड़ तक पहुँच गया है। यह वृद्धि से 75 फीसद से ज़्यादा है।

यह विडम्बना ही है कि संयुक्त राष्ट्र संघ के विश्व खाद्य शताब्दी सम्मेलन 2000 में विभिन्न सदस्य देशों की सरकारों द्वारा भूख घटाने के वायदे के बावजूद भी इस दिशा में कोई प्रगति नहीं दिखती। संयुक्त राष्ट्र संघ के भोजन के अधिकार सम्बन्धी विशेष दूत जीन जिगलर कहते हैं, "प्रतिवर्ष 60 लाख से ज़्यादा बच्चे 5 वर्ष से कम की उम्र में ही भूख या भूख से सम्बन्धित बीमारियों की वजह से असमय मौत का शिकार हो जाते हैं।"

वर्तमान दौर के विकास माडल में भूख और अकाल अपरिहार्य नहीं है। खाद्य अनाज के उत्पादन से लोग और कम्पनियाँ मुँह मोड़कर अखाद्य फसलों का उत्पादन करने लगें तो स्थिति का अन्दाजा लगाया जा सकता है। जैविक ईंधन बनाने की होड़ में कई देशों में किसान अपने अनाज का अखाद्य इस्तेमाल कर रहे हैं। एक अनुमान के अनुसार 50 लीटर जैविक ईंधन हेतु 200 किलोग्राम मक्का की ज़रूरत पड़ती है। ज्ञातव्य है कि इतने ही अनाज में एक व्यक्ति एक वर्ष तक अपना पेट भर सकता है।

भूख को बाज़ार ने मुनाफ़े के धन्धे के रूप में परिवर्तित कर लिया है। अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ स्वास्थ्य व पोषण की कमी का वास्ता देकर ऐसी नीतियाँ और कार्यक्रम थोप रही हैं जिससे खाद्य उद्योग में लगी बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को सीधे फायदा पहुँच रहा है। अब भारत सहित दुनिया भर में नागरिकों के स्वास्थ्य और पोषण सम्बन्धी अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक निजी भागीदारी (पी.पी.पी.) को इस तरह से पेश किया जा रहा है मानो देश में लोगों का स्वास्थ्य इसी बुनियाद पर खड़ा किया जा सकता है अन्यथा भारत बीमारियों व कुपोषण के दलदल में धँस जाएगा।

वर्ष 2005 में विश्व स्वास्थ्य सभा (डब्ल्यू.एच.ए.) में स्तनपान के सवाल पर हुई बहस के दौरान भारत ने अपना पक्ष रखते हुए कहा था, "व्यावसायिक संगठनों की मुख्य प्राथमिकता लाभ कमाना है। इसलिए व्यावसायिक संगठनों से ऐसी अपेक्षा रखना न तो उचित है और न ही व्यावहारिक कि वे स्तनपान को संरक्षण, प्रोत्साहन और समर्थन देने के लिए सरकारों व अन्य समूहों के साथ मिलकर काम करेंगे।" तब डब्ल्यू.एच.ए. ने प्रस्ताव क्रमांक 58.32 को स्वीकार करते हुए सदस्य समूहों से आग्रह किया था कि वे यह सुनिश्चित करें कि शिशुओं व छोटे बच्चों के स्वास्थ्य के लिए कार्यक्रमों व कार्यकर्त्ताओं के लिए वित्तीय समर्थन व अन्य प्रोत्साहन में किसी प्रकार से हितों के बीच टकराव न हो। मई 1981 में भी 34वीं विश्व स्वास्थ्य सभा में स्तनपान के विकल्पों के विपणन सम्बन्धी अन्तरराष्ट्रीय कोड को स्वीकारते हुए माना गया था कि लाभोन्मुखी व्यावसायिक संस्थान समतामूलक विकास के पैरोकार नहीं बन सकते। इन दिशा निर्देशों में नागरिक समाज और यूनिसेफ एवं डब्ल्यू.एच.ओ. जैसे अन्तरराष्ट्रीय संगठनों से उम्मीद की गई थी कि वह महज़ लाभ के लिए सक्रिय उद्योगों से अच्छी तरह निपटेंगे लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। उल्टे कथित पोषण एवं विटामिनों का धन्धा करने वाली कम्पनियों की तो चाँदी हो गई और भ्रामक विज्ञापनों का सहारा लेकर नेस्ले, हिन्दुस्तान लिवर और ऐसी ही अन्य बेबी फूड बनाने वाली कम्पनियों ने ख़ूब मुनाफ़ा कमाया। उस दौर में इन कम्पनियों के विज्ञापनों का यह असर था कि शहरों में रहने वाली मध्यमवर्गीय युवा माताओं ने अपने नवजात शिशु को भी अपने स्तन का दूध पिलाने की बजाय इन कम्पनियों का डिब्बाबन्द दूध देना स्वीकार कर लिया था।

अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर नेस्ले जैसी कम्पनियों का रुतबा देखिये। सन् 1974 में थर्ड वर्ल्ड एक्शन ग्रुप नामक एक ज़न संगठन ने एक पर्चा प्रकाशित किया था। शीर्षक था – "शिशुओं का हत्यारा – नेस्ले।" इस पर्चे के ख़िलाफ़ नेस्ले ने मुक़दमा कर दिया और सन् 1976 में अदालत का फ़ैसला नेस्ले के पक्ष में आया। अदालत ने "आपराधिक क़ानून के तहत" नेस्ले को शिशुओं की मौत के लिए ज़िम्मेदार नहीं" पाया। उल्टे अदालत ने थर्ड वर्ल्ड एक्शन ग्रुप पर 300 स्विस फ्रैंक का जुर्माना लगाया और आगाह किया कि ग्रुप अपने पर्चों की भाषा में संयम बरते।

कथित पोषण और हेल्थ फूड के धन्धे में लगी कम्पनियों की तो अब

चल निकली है। भूमण्डलीकरण के दौर में इन कम्पनियों ने बड़े पैमाने पर स्वास्थ्य और भूख का वास्ता देकर अपने उल्टे-सीधे उत्पादों को महँगी दर पर बाज़ार में भर दिया है। यूनिसेफ तथा डब्ल्यू. एच.ओ. जैसे संगठनों ने भी अपने 27 वर्ष पूर्व के 34वें विश्व स्वास्थ्य सभा के घोषणा पत्र को उठाकर किनारे कर दिया है। जिसमें कहा गया था कि, ''लाभ के लिए सक्रिय कम्पनियाँ व्यापक जनहित की पोषक नहीं हो सकती।'' अब यूनिसेफ ने ''ग्लोबल एलायंस फॉर इम्प्रूव्ड न्यूट्रीशन'' (गेन) से हाथ मिलाया है। गेन एक ऐसा संगठन है जो अन्तरराष्ट्रीय खाद्य व्यापार कम्पनियों के हित, पोषण और संरक्षण के लिए काम करता है। अब आशंका है कि इससे विभिन्न देशों की पोषण और खाद्य नीतियों में बाज़ार और बहुराष्ट्रीय खाद्य कम्पनियों का दख़ल बढ़ जाएगा।

गेन ने विभिन्न बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के खाद्य उत्पादों को विभिन्न देशों के राष्ट्रीय खाद्य, स्वास्थ्य एवं पोषण नीतियों में शामिल करने के लिए सरकारों से लाबिंग भी शुरू कर दी है। यह जानना ज़रूरी है कि अन्तरराष्ट्रीय संस्थाएँ यूनिसेफ तथा डब्ल्यू.एच.ओ. के प्रतिनिधि अब 'गेन' की बैठक में उन्हीं बहुराष्ट्रीय खाद्य निर्माता कम्पनियों के प्रतिनिधियों के साथ बैठते हैं जिन्होंने कई देशों में अन्तरराष्ट्रीय दिशा निर्देशों का उल्लंघन किया है। 'गेन' के बोर्ड सदस्यों में बायर, कोकाकोला, नेस्ले, नोवार्टिस, पेप्सीको, फाइजर, प्राक्टर एण्ड गैम्बल जैसी अनेक खाद्य, रसायन एवं दवा कम्पनियों के प्रतिनिधि शामिल हैं। इसी गेन ने अभी 'हैज फूड्स' के साथ मिलकर 'स्प्रिंकल्स' नामक उत्पाद के समर्थन और विकास के लिए काफ़ी पैसा दिया है, जो 6 माह के बच्चों के शरीर में लोहा की कमी से होने वाले एनिमिया के उपचार में प्रयुक्त होता है।

यहाँ यह जानना ज़रूरी है कि 'गेन' की स्थापना दुनियाभर में बच्चों के स्वास्थ्य को ध्यान में रखकर की गई है। सन् 2002 में संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशेष बैठक में इसकी स्थापना की गई। इसका मक़सद उन बच्चों के लिए विशेष पोषण युक्त खाद्य (फ़ोर्टीफ़ाइड फूड्स) को प्रचलित करना था जिन्हें पर्याप्त भोजन और पोषण नहीं मिल पाता है। इसके लिए निजी क्षेत्र के साथ भागीदारी करने की बात कही गई थी। इसके उद्देश्यों में यह भी शामिल है कि बिल एण्ड मेलिंडा गेट्स फ़ाउंडेशन तथा संयुक्त राष्ट्र संघ की अन्य एजेंसियों की अगुवाई में गेन इस बात की लॉबिंग करने का प्रयास करेगा कि लक्षित देशों में खाद्य कम्पनियों के लिए अनुकूल शुल्क दरें लागू हों। इस लॉबिंग में अमेरिका, जापान, जर्मनी, कनाडा जैसे देशों की सरकारों ने गेन का साथ देने का वायदा किया है। इसका उद्देश्य साफ़ है कि दुनिया में फोर्टिफाइड फूड्स की बड़े पैमाने पर माँग बढ़े। गेन अब डी. एस.एम. न्यूट्रीशनल प्रोडक्ट्स, कारगिल, एक्जो, प्राक्टर एण्ड गैम्बल के साथ मिलकर 'गेन प्रीमियम फन्ड' स्थापित करने की दिशा में भी काम कर रहा है। यह 'फन्ड' एन.जी.ओ. व सरकारों के माध्यम से ऐसे उत्पादन के प्रचार व विज्ञापन को बढ़ाने में भी मदद देगा। इस योजना पर सितम्बर 2007 में सहमति बन चुकी है।

सवाल है कि 'गेन' जैसे प्रयास भारत व भारत जैसे पिछड़ों मुल्कों की पोषण व्यवस्था को ध्वस्त कर देंगे। भारत में 1992 से टिकाऊ एवं आत्मनिर्भर पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए एक अधिनियम बना हुआ है। अब 'गेन' के सक्रिय होने से भारत की पोषण सुरक्षा नीति बुरी तरह प्रभावित होगी। मौजूदा भारतीय पोषण सुरक्षा क़ानून (1992) में निम्नलिखित मुख्य प्रावधान हैं :-

1) दो साल से कम उम्र के बच्चों के लिए निर्मित शिशु आहार और दूध की बोतलों के प्रचार-प्रसार पर प्रतिबन्ध।
2) प्रिंट मीडिया, इलेक्ट्रानिक मीडिया व अन्य किसी भी प्रचार माध्यम में इन चीज़ों का विज्ञापन नहीं होगा।
3) कोई भी कम्पनी किसी भी गर्भवती या दूध पिलाने वाली महिला को उपहार या ऐसे उत्पाद का मुफ़्त नमूना नहीं दे सकती।
4) विज्ञापनों में माताओं, शिशुओं की तस्वीर कार्टून या अन्य सम्बन्धित ग्राफ़िक्स का इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।
(5) दवा व पोषण का कारोबार करने वाली कम्पनियाँ स्वास्थ्य कार्यकर्त्ताओं को किसी प्रकार का भुगतान नहीं कर सकती या बैठकों, सम्मेलनों, सेमिनार आदि को प्रायोजित नहीं कर सकती।

अब गेन के सक्रिय होने से भारत सहित अन्य देशों में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा पर सवाल खड़े हो गए हैं। भारत में राष्ट्रीय पोषण नीति को ठीक से लागू करने के लिए डॉ. एम. एस. स्वामीनाथन की अध्यक्षता में एक संगठन बनाया गया है – "कोलीशन फॉर सस्टेनेबल न्यूट्रीशन सिक्युरिटी इन इन्डिया"। गेन भारत में इस कोलीशन के साथ भी काम कर रहा है। अब सवाल है कि भारत में खाद्य एवं पोषण सुरक्षा की शर्त पर गेन के एजेण्डा को कैसे चलने दिया जा सकता है। इससे टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गई है और ख़बर है कि अन्तरराष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं पोषण संगठनों यूनिसेफ, डब्ल्यू.एच.ओ. आदि के प्रतिनिधि खाद्य एवं पोषण की बड़ी कम्पनियों के आगे बौने नज़र आ रहे हैं।

भोजन एवं पोषण के व्यापार से जुड़ी बड़ी कम्पनियों का दबाव है कि राष्ट्रीय पोषण कार्यक्रम में फ़ोर्टीफ़ाइड आहार शामिल किया जाए। मई 2008 में चिकित्सा की चर्चित पत्रिका 'लैन्सेट' ने जच्चा-बच्चा कुपोषण पर एक श्रृंखला प्रकाशित की थी। इसमें सूक्ष्म पोषक तत्त्वों पर जोर था और सिफ़ारिश की गई थी कि राष्ट्रीय पोषण कार्यक्रम में फोर्टीफाइड आहार को शामिल किया जाए। हालाँकि कई वैज्ञानिक इस 'फोर्टीफिकेशन' को गैर ज़रूरी और विशुद्ध व्यापारिक बताते हैं। शिशु रोग विशेषज्ञों की पत्रिका इन्डियन पीडियाट्रिक्स के सम्पादक डा. पीयूश गुप्ता सवाल उठाते हैं कि ''क्या सभी

बच्चों के लिए विटामिन 'ए' युक्त पूरक आहार ज़रूरी है?'' ध्यान देने की ज़रूरत है कि कुछ वर्ष पूर्व ऐसे ही नमक में आयोडीन की अनिवार्यता की वकालत की गई थी। नमक में आयोडिन की अनिवार्यता के लिए कम्पनियों ने पूरा दबाव बनाया और सरकार को इस दबाव में क़ानून भी बदलना पड़ा। उल्लेखनीय है कि सरकारी क़ानूनों की आड़ में आयोडिन युक्त नमक की अनिवार्यता आम नागरिकों पर थोप कर इस देश में कई बीमारियों के लिए रास्ता खोल दिया गया है।

नमक में आयोडिन की अनिवार्यता को थोपने के मामले की पड़ताल करने से इस आशंका की पुष्टि हो जाती है कि देर सबेर चावल में विटामिन ए अथवा आटे में ल्योहा तथा अन्य सूक्ष्म पोषक तत्त्वों को दैनिक उपयोग के अनाजों में मिलाकर फोर्टीफाइड फूड के रूप में बाज़ार में उतारा जा सकता है। केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्रालय के विश्वस्त सूत्रों के हवाले से इस लेखक को खबर है कि मन्त्रालय में आयोडाइज्ड नमक को डबल फ़ोर्टीफ़ाइड (उसमें लोहा मिलाने) की एक महत्वाकांक्षी योजना लम्बित है जिसमें सम्बन्धित कम्पनी ने सर्वेक्षण के आधार पर यह भी दावा किया है कि लोगों को यदि ठीक से शिक्षित किया जाए तो लोग मौजूदा दर से दो गुनी क़ीमत पर भी 'डबल फ़ोर्टीफ़ाइड नमक' लेने को तैयार हैं।

चिन्ता की बात तो यह है कि कम्पनियों और बाज़ार के गठजोड़ ने हमारी प्राकृतिक खाद्य व्यवस्था को खत्म कर देने की योजना बना ली है और हम उसके जाल में फँस चुके हैं। कई पोषक तत्त्व तो खाद्य में कृत्रिम रूप से डाले ही नहीं जा सकते। जैसे-जिंक। हमारे शरीर में जिंक की कमी को प्राकृतिक खाद्य पदार्थों के सेवन से ही पूरा किया जा सकता है। इसके लिए जैविक खेती को बढ़ावा देने की ज़रूरत है। क्योंकि रासायनिक कीटनाशकों के उपयोग से ज़मीन में उपलब्ध सूक्ष्म पोषक तत्त्व नष्ट हो जाते हैं और हमारे शरीर को प्राकृतिक रूप से पर्याप्त पोषण नहीं मिल पाता। यह विडम्बना ही है कि पहले पोषण के प्राकृतिक तरीक़े को हम नष्ट कर दें और फिर पोषण के लिए बाज़ार की तथाकथित तकनीक पर निर्भर हो जायें।

भारत में तेज़ी से विकसित होते खाद्य बाज़ार और इसके पीछे लगी बड़ी कम्पनियों की सफलता अभी से देखी जा सकती है। आम जनता के स्तर पर ऐसी योजना में जानकारी के अभाव में लोगों को कोई साज़िश नज़र नहीं आती। कम्पनियाँ भी मध्यम वर्ग के लोगों को प्रभावित करना अच्छी तरह जानती हैं। इस कार्य में क्रिकेट स्टार धोनी, हरभजन, युवराज या सिने स्टार आमिर, शाहरुख या सलमान या कोई और सेलेब्रिटी अच्छी तरह इस्तेमाल होते हैं। नमक में आयोडीन की अनिवार्यता को सरकारी क़ानूनों ने जितना प्रभावी नहीं बनाया उतना विज्ञापन और प्रचार ने। वैसे भी गेन जैसी संस्था की स्थापना बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का बाज़ार निर्माण करने के लिए ही की गई है। गेन इन कम्पनियों के बाज़ार बढ़ाने के लिए विभिन्न देशों में खाद्य और पोषण क़ानूनों को अपने अनुकूल बनवाने के लिए भी प्रयासरत है। भारतीय सांसदों के बीच गेन ने एक बैठक आयोजित कर उन्हें फोर्टीफाइड फूड के फायदे बताए। इसका असर भी रंग लाने लगा है। सांसद सचिन पायलट विटामिन ए युक्त कृत्रिम पोषक आहार के प्रबल समर्थक बन गए हैं। पिछले संसद सत्र में वे इसकी ज़ोरदार वक़ालत भी कर चुके हैं।

गेन कुपोषण की समस्या का समाधन बाज़ार में तलाशता है। गेन का उद्देश्य भारत में पोषक आहार के लिए एक अरब लोगों का बाज़ार निर्मित करना है। गेन ने अभी-अभी हैदराबाद में ही ब्रिटानिया नामक कम्पनी को एक लाख बच्चों तक अपना कथित पोषक उत्पाद पहुँचाने का मौक़ा उपलब्ध कराया है। इस प्रकार कुपोषण के इस बाज़ार में बड़ी कम्पनियों को बड़े बाज़ार बनाने के व्यापक अवसर उपलब्ध हो रहे हैं। इस झटपट समाधान की आपाधापी में भूख और कुपोषण के मूल सवाल दब गये हैं। इन सवालों का फ़ास्ट-फूड स्टाइल वाला जवाब स्थाई समाधान दे नहीं सकता क्योंकि भूख महज़ एक समस्या नहीं साम्राज्यवाद की मुक़म्मल नीति है। जब तक नीति पर चोट नहीं होगी भूख का बाज़ार फलता-फूलता रहेगा।

(लेखक जन स्वास्थ्य वैज्ञानिक एवं राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त होमियोपैथिक चिकित्सक हैं)

यू.पी.ए. सरकार की अघोषित नयी शिक्षा नीति

(पेज 23 से आगे)

बाहर होते जायेंगे। इसके अतिरिक्त, एक और ख़तरनाक क़दम जिसकी बात यह बिल करता है वह यह है कि हर विश्वविद्यालय अपना पाठ्यक्रम स्वयं तय करने की आज़ादी रखेगा। यानी कोई सामान्य पाठ्यक्रम की व्यवस्था नहीं होगी और कोई भी समझ सकता है कि कालान्तर में पाठ्यक्रम के मामले में भी वर्ग पदानुक्रम की व्यवस्था स्थापित हो जाएगी। ये सारे क़दम उच्च शिक्षा को आम जनता की पहुँच से और अधिक दूर पहुँचा देंगे।

साफ़ है कि यू.पी.ए. सरकार प्राथमिक शिक्षा और उच्च शिक्षा, दोनों में ही जो सुधार कर रही है, वह पूँजीपति वर्ग और भारत और वैश्विक पूँजीवाद की ज़रूरतों के मद्देनज़र कर रही है। एक ओर तो उसे कुशल और पढ़ी-लिखी श्रम शक्ति की ज़रूरत है। इसलिए प्राथमिक शिक्षा, चाहे वह किसी भी गुणवत्ता की हो, की पहुँच को थोड़ा और विस्तारित किया जा रहा है। विश्वविद्यालयों की शिक्षा को महँगा बनाकर आई.टी.आई. और पॉलीटेक्निक अधिक संख्या में खोले जा रहे हैं। उच्च शिक्षा के परिसरों को अमीरज़ादों की बपौती बनाया जा रहा है। यह है भारतीय पूँजीपति वर्ग की नयी शिक्षा नीति का सार।